SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

रासायनिक युद्धकर्म एवं भारतीय इतिहास

निर्मला मीणा, सैन्य विज्ञान,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author :
निर्मला मीणा, सैन्य विज्ञान,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश,

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 16/07/2020
Revised on : -----
Accepted on : 22/07/2020
Plagiarism : 04% on 16/07/2020

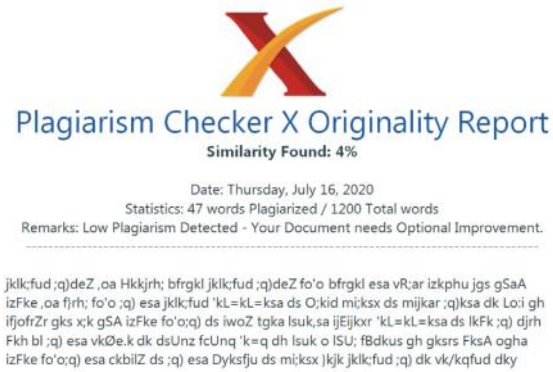
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 4%

Date: Thursday, July 16, 2020
Statistics: 47 words Plagiarized / 1200 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

jklk;fud ;q)deZ ,oa Hkkjrh; bfrgkl jklk;fud ;q)deZ fo'o bfrgkl esa vR;ar izkphu jgs gSaA izFke ,oa f}rh; fo'o ;q) esa jklk;fud 'kL=kL=ksa ds O;kid mi;ksx ds mijkar ;q)ksa dk Lo:i gh ifjofrZr gks x;k gSA izFke fo'o;q) ds iwoZ tgka lsuk,sa ijEijkxr 'kL=kL=ksa ds lkFk ;q) djrh Fkh bl ;q) esa vkØe.k dk dsUnz fcUnq 'k=q dh lsuk o lSU; fBdkus gh gksrs FksA ogha izFke fo'o;q) esa ckbilZ ds ;q) esa Dyksfju ds mi;ksx)kjk jklk;fud ;q) dk vk/kqfud dky

शोध सारांश :

रासायनिक युद्धकर्म विश्व इतिहास में अत्यंत प्राचीन रहे हैं। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध में रासायनिक शस्त्रास्त्रों के व्यापक उपयोग के उपरांत युद्धों का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया है। प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व जहां सेनाऐं परम्परागत शस्त्रास्त्रों के साथ युद्ध करती थी इस युद्ध में आक्रमण का केन्द्र बिन्दु शत्रु की सेना व सैन्य ठिकाने ही होते थे। वहीं प्रथम विश्वयुद्ध में बाइपर्स के युद्ध में क्लोरिन के उपयोग द्वारा रासायनिक युद्ध का आधुनिक काल प्रारंभ हुआ। 22 अप्रैल 1915 को जर्मन सैनिकों द्वारा शत्रु सेना को खाइयों और बंकरों से बाहर निकालने के उद्देश्य से युद्ध क्षेत्र में क्लोरिन गैस के सिलेण्डर खोल दिये थे। परिणाम स्वरूप फ्रांसिसी सेना में अफरातफरी उत्पन्न हो गयी और मोर्चे पर पराजय का सामना करना पड़ा के उपरांत समस्त विश्व की सेनाओं के आक्रमण का केन्द्र बिन्दु शत्रु सेना न होकर शत्रु के आम नागरिक प्रतिष्ठान केन्द्र होने लगे जिससे कि शत्रु का मनोबल गिराकर उसे आसानी से पराजित किया जा सके। इसके उपरांत से वर्तमान तक विभिन्न युद्धों में विभिन्न राष्ट्रों की सेनाओं ने रासायनिक पदार्थों का उपयोग युद्ध में शस्त्रास्त्रों के रूप में किया है।

मुख्य शब्द :

रासायनिक युद्धकर्म, विश्वयुद्ध, सेना।

भारतीय संदर्भ में यदि हम विश्लेषण करें तो भारत के सर्वप्रमुख सैन्य ग्रन्थों रामायण एवं महाभारत के अतिरिक्त उपनिषद काल अथर्ववेद ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डे पुराण, विष्णु धर्मात्तर पुराण कामंदर नीति शास्त्र, शुक्र नीति शास्त्र, पंचतंत्र भ्रगु संहिता, मनुस्मृति, जमदाग्नि तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में युद्ध के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के रसायनों के उपयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तो अत्यंत ही विस्तृत रूप से विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग बताया गया है।

धनुर्वेद के अंतर्गत तत्कालीन समय में चार प्रकार के रासायनिक हथियारों के उपयोग का वर्णन है :

1. **मुक्त :** इसके अंतर्गत फैंकने वाले बाणों, भालों अथवा अन्य शस्त्रास्त्रों पर विभिन्न प्रकार के रसायन क्षेपित करके शत्रु के ऊपर फेंके जाते थे।
2. **अमुक्त :** इसके अंतर्गत वे सभी शस्त्रास्त्र जिनका उपयोग बाहुबल के द्वारा किया जाता था जैसे– तलवार, गदा, बल्लम आदि इनके ऊपर भी विभिन्न रसायनों का लेप किया जाता था। जैसे ही यह शत्रु शरीर पर वार करते थे इसमें लगा हुआ रसायन शत्रु को युद्ध न करने योग्य बना देता था।
3. **मुक्तामुक्त :** मुक्तामुक्त के अंतर्गत वे शस्त्रास्त्र होते थे जिनका उपयोग दोनों ओर से एक साथ किया जाता था जैसे चक्र, फरसा आदि इन पर भी रसायन का लेप किया जाता था।
4. **मंत्रमुक्त :** इसके अंतर्गत भी विभिन्न मंत्रित शस्त्रास्त्रों पर रसायन लेपित किये जाते थे।

रामायण काल में विभिन्न राक्षसों (रावण की सेना) के द्वारा घनघोर धुंआ उत्पन्न कर देना, तेजाब की वर्षा करना, मूर्क्षा अस्त्र का उपयोग करके शत्रु को बेहोश कर देना। जिसमें राजा राम के अनुज भाई लक्ष्मण को अमोघ अस्त्र द्वारा मूर्क्षित करना आदि का वर्णन किया गया है। रामायण कालीन प्रमुख रासायनिक शस्त्रास्त्रों में दण्डचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र ऐशिक आग्नेय वायव्य हय शिरोनाम धर्मपाश, कालपाश, वरूणपाश, आसायनिक, गान्धर्व पर्श्ववापन संताप, कंदर्व दमित पोशल्य दारूण आदि के साथ साथ विभिन्न प्रकार के बाणों जिसमें अग्नी दीप्त, अंजलिक, आशी विशानन, मृगमुख, उलकामुख, खरमुख, नागमय, मकरानन, लेलिहान आदि रसायनों से युक्त वाणों का उपयोग उल्लेखित है। तत्कालीन समय में ऋषि भारद्वाज, विश्वामित्र एवं अगस्तय मुनि के आश्रमों (सैन्य प्रशिक्षण केन्द्र) में विभिन्न प्रकार के रासायनिक शस्त्रास्त्रों के उपयोग को सिखाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

महाभारत काल में भी कौरव एवं पाण्डवों की सेनाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के रसायनों का समय–समय पर उपयोग किये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। राजा शल्व और भीष्म के मध्य युद्ध में वरूण और ऐन्द्र अस्त्रों का उपयोग, विराट पर्व में अर्जुन के द्वारा वायव्य अस्त्रों का उपयोग द्रोण पर्व में अर्जुन द्वारा क्षेप्तास्त्र भार्गव स्थूल कर्ण और इन्द्र जल आदि का उपयोग वनपर्व में अर्जुन द्वारा ही पाशुपतास्त्र का उपयोग किये जाने का उल्लेख है। महाभारत के उद्योग पर्व के अध्याय 155, द्रोण पर्व तथा सौष्टिक पर्व में भी विभिन्न प्रकार के रसायनों से युक्त शस्त्रास्त्रों का वर्णन है।

महाभारत काल में उपयोग में लाये जाने वाले कुछ प्रमुख रासायनिक शस्त्रास्त्र इस प्रकार हैं। जैसे तेल–गुण और बालु एक साथ शत्रु पर फैंके जाते थे, आशीविषधर यंत्र इसमें सर्पों से भरे मटके जिसमें राल द्रव्य भी भरा होता था। शत्रु पर फेंके जाते थे जिनके पृथ्वी पर गिरने से विस्फोट होने पर राल जलने लगता था तथा सर्प सैनिकों को काटने लगते थे। महाभारत काल में ही जलोधास्त्र का उपयोग किया जाता था जिससे तेज बारिश होने लगती थी। प्रस्वाप का उपयोग शत्रु को बेहोश करने के लिये किया जाता था। मौर्यकाल में तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विस्तृत रूप से रासायनिक शस्त्रास्त्रों के उपयोग का वर्णन किया गया है। जिसमें निम्न सर्वप्रमुख हैं :

1. **ज्वलनशील रासायनिक शस्त्र :** इसके अंतर्गत कौटिल्य ने लिखा है कौवा, मैना, उल्लू और कबूतरों को पकड़वाकर उनकी पूँछ में ज्वलनशील रसायन लगाकर शत्रु दुर्ग की ओर उड़ा देना चाहिए। इसकी सहायता से शत्रु दुर्ग में आग लगायी जा सकती है सरल देवदारू, बूगल, राल और लाख की गोली आदि से लादकर ऊँठ और बकरा आदि को भी शत्रु क्षेत्र में भेजकर आग लगायी जा सकती थी।
2. **प्राणनाशक रासायनिक शस्त्र :** जंगली तीतर, मेंढक, कानखजूरा आदि को मारकर इनका धुँआ यदि शत्रु की ओर उडाया जाये तो इस धुंऐं की चपेट में आने से शत्रु की तत्काल ही मृत्यु हो सकती है। इसी के अंतर्गत सांप, छिपकली आदि को जलाना अथवा तेल में उनको पकाकर इस तेल को शत्रु के ऊपर यदि डाला जाये तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

इसी प्रकार शत्रु को दृष्टिहीन बनाने वाले रसायन के रूप में कांटेदार करजुआ चाबल का मांण, यदि गोबर में जलाकर धुंआ किया जाये तो इसकी चपेट में आने वाले व्यक्ति दृष्टिहीन भी हो सकते हैं।

3. **जल प्रदुषण करने वाले रासायनिक शस्त्र :** मैना, कबूतर और बगुला की विष्ठा (मल) को आक, सौजना और बहेड़ा के साथ मिलाकर जो रस तैयार होता है उसे शत्रु के पीने के पानी के स्त्रोतों नदियों, बाबड़ी, तालाबों आदि में यदि मिला दिया जाये तो संपर्क में आने वाला व्यक्ति शारीरिक रूप से अक्षम हो जाता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अंतर्गत रसायनों के आक्रमण के प्रभाव से बचने के भी विभिन्न उपाय विस्तृत रूप से बताये गये हैं। कौटिल्य के अनुसार यदि शत्रु द्वारा प्रयुक्त किये गये विष के कारण सैनिक मरने लगे अथवा घायल होने लगे तो कैथ, जमालगोटा, जबीरी, नींबू, गोवी, ग्वारपाठा आदि की छाल को उबालकर काड़ा बना लिया जाये तो इस काड़े का सेवन करने से विष का असर समाप्त हो जाता है, कायफल, कांटेदार करजुआ और तिल का तेल मिलाकर नाक में डालने से उनमाद और उत्तेजना कम होती है। कांगनी, मंजीट, लाख, महुआ, हल्दी और शहद का उपयोग करने से सैनिक को अचेत अवस्था से होश में लाने के लिये बहुत ही सहायता प्राप्त होती है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त प्रकार के विभिन्न रासायनिक शस्त्रास्त्रों का उपयोग करने अथवा शत्रु के द्वारा उपयोग किये जाने की स्थिति में बचाव करने के लिये विभिन्न उपाय विभिन्न प्रकार के भारतीय वेद पुराणों और प्राचीन ग्रंथों में किये गये हैं। रणक्षेत्र में आग लगाना, घनघोर वर्षा करना, बड़े वेग से हवाओं को चलाना, चारों ओर अंधकार कर देना के साथ साथ सम्मोहन शक्ति और माया शक्ति जैसे रासायनिक शस्त्रास्त्रों का उपयोग करना भी भारतीय प्राचीन एतिहासिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सैन्य व्यवस्था के अंतर्गत रासायनिक युद्ध कर्म का उपयोग अत्यंत प्राचीनकाल से होता रहा है।

संदर्भ सूची :

1. *Menon, Raja (2004),Weapons of Mass destruction; options for India.*
2. *Jonathan R. (2018), Indian Ancient Military History : New Delhi.*
3. *Khanwilkar, M. (1983), Ancient Military History of India.*
4. *Robinson, J. Perry, Chemical and Biological Welfare : .*
5. *The Problem of Chemcial and Biological Warfare ; SIPRI, Vol 2 ; Page 42-43.*
6. *The Problem of Chemical and Biological Warfare, SIPRI : Vol.-2, Page 59-64 ; 1984.*

****